राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर पीठ

खंडपीठ विशेष अपील रिट संख्या 479/2022

सुनील कुमार शर्मा पुत्र स्वर्गीय श्री तुलसी राम शर्मा, उम्र लगभग 45 वर्ष, निवासी वार्ड संख्या 15, मोहल्ला लुडीवास, पोस्ट सादुलपुर, जिला चूरू वर्तमान में वरिष्ठ-सहायक, राजकीय आदर्श उच्च माध्यमिक विद्यालय, भामासी, तहसील एवं जिला चूरू (राजस्थान)।

---- अपीलार्थी

बनाम

1. राजस्थान राज्य, मुख्य सचिव, राजस्थान सरकार, सचिवालय, जयपुर (राजस्थान) के माध्यम से।
2. प्रमुख सचिव, शिक्षा विभाग, राजस्थान सरकार, सचिवालय, जयपुर (राजस्थान)।
3. प्रमुख सचिव, कार्मिक विभाग, राजस्थान सरकार, सचिवालय, जयपुर (राजस्थान)।
4. निदेशक, माध्यमिक शिक्षा, बीकानेर, राजस्थान।
5. निदेशक, प्रारंभिक शिक्षा, बीकानेर, राजस्थान।
6. जिला शिक्षा अधिकारी, चूरू, राजस्थान।

---- प्रत्यर्थीगण

अपीलार्थी (गण) की ओर से : श्री अनूप पारीक, अधिवक्ता

माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश गुप्ता

माननीय न्यायमूर्ति अनूप कुमार ढांड

<u>निर्णय</u>

<u>03/08/2022</u>

<u>रिपोर्टेबल</u>

(प्रतिः अनूप कुमार ढांड, न्यायमूर्ति)

इस विशेष अपील में चुनौती विद्वान एकलपीठ द्वारा पारित आदेश दिनांक 04.10.2021 को दी गई है, जिसके द्वारा रिट याचिकाकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका को देरी और खामियों के आधार पर अपास्त कर दिया गया है।

अपीलार्थी के अधिवक्ता का कहना है कि अपीलार्थी को राजस्थान मृत सरकारी सेवक आश्रित अनुकंपा नियुक्ति नियम, 1996 (संक्षेप में '1996 के एल.डी.सी नियम') के तहत आदेश दिनांक 14.08.2003 द्वारा लोअर डिवीजन क्लर्क (संक्षेप में 'एल.डी.सी.') के पद पर नियुक्ति दी गई थी। अधिवक्ता का कहना है कि वर्ष 2003 में नियुक्ति मिलने के बाद अपीलार्थी ने अपनी शिकायत के निवारण के लिए नियमित आधार पर विभाग को अभ्यावेदन प्रस्तुत किया। अधिवक्ता का कहना है कि अभ्यावेदन की अस्वीकृति के बाद भी, अपीलार्थी द्वारा कई अन्य अभ्यावेदन प्रस्तुत किए गए थे, लेकिन इस तथ्य पर विद्वान एकलपीठ द्वारा विचार नहीं किया गया और रिट याचिका देरी और खामियों के आधार पर अपास्त कर दी गई। अधिवक्ता का कहना है कि अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन को प्रत्यर्थीगण ने 26.02.2003 को यह देखते हुए अपास्त कर दिया था कि अपीलार्थी ने वर्ष 1997 में कुमाऊं विश्वविद्यालय से बी.एड. की अपेक्षित डिग्री प्राप्त की थी।, जबकि नेशनल काउंसिल फॉर टीचर्स एजुकेशन (संक्षेप में 'एनसीटीई') ने वर्ष 1998-99 में उपरोक्त डिग्री को मान्यता दी है। अधिवक्ता का कहना है कि अपीलार्थी के पास बी.एससी. एवं बी.एड. की योग्यता थी, अतः वे शिक्षक पद पर नियुक्ति पाने के पात्र थे लेकिन उनकी योग्यता पर विचार किये बिना उन्हें एल.डी.सी. पद पर नियुक्ति दे दी गयी। अधिवक्ता का कहना है कि इन परिस्थितियों में, विद्वान एकलपीठ ने रिट याचिका को अपास्त करने में त्रुटि की है। अधिवक्ता का कहना है कि तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए और अपीलार्थी की योग्यता को देखते हुए, वह सभी परिणामी लाभों के साथ शिक्षक के पद पर नियुक्ति पाने का पात्र है।

सुना गया।

रिकार्ड का अवलोकन किया गया और तर्कों पर विचार किया गया।

इसमें कोई विवाद नहीं है कि अपीलार्थी को 14.08.2003 को एल.डी.सी. के पद पर नियुक्ति दी गई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलार्थी उक्त नियुक्ति से संतुष्ट नहीं था और उसने बी.एससी.और बी.एड. की योग्यता के आधार पर शिक्षक के पद पर नियुक्ति देने के

लिए अधिकारियों के समक्ष एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया था। अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन को अधिकारियों द्वारा 26.02.2003 को अस्वीकार कर दिया गया था। उक्त अभ्यावेदन को अस्वीकार करने के बाद, अपीलार्थी ने लगभग 18 वर्षों तक चुप्पी साधे रखी और 18 वर्षों की अत्यधिक देरी के बाद, उन्होंने विद्वान एकलपीठ के समक्ष रिट याचिका दायर की, जिसके लिए उनके द्वारा कोई उचित स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया गया।

अपीलार्थी के अधिवक्ता द्वारा दिये गये तर्कों में कोई दम नहीं है कि वर्ष 2003 में अभ्यावेदन अपास्त होने के बाद भी उन्होंने इन 18 वर्षों में कई अभ्यावेदन प्रस्तुत किये।

माननीय उच्चतम न्यायालय ने **भारत संघ एवं अन्य बनाम चमन राणा,** (2018) **5** उच्चतम न्यायालय **798** में रिपोर्ट किया गया, के मामले में पैरा संख्या 10 में माननीय उच्चतम न्यायालय के तहत आयोजित मामले की यह निर्णय दिया:-

> *10. केवल बार-बार अभ्यावेदन दायर करना राहत देने के लिए न्यायालय का दरवाजा खटखटाने में देरी के लिए पर्याप्त स्पष्टीकरण नहीं हो सकता है, के आधार पर चागला सी.जे. द्वारा गांधीनगर मोटर ट्रांसपोर्ट सोसाइटी बनाम कासबेकर मामले में (एससीसी ऑनलाइन बॉम: एआईआर पी. 203, पैरा 2) यह विचार व्यक्त किया गया था:*
>
> *"2....अब, हमारे पास यह इंगित करने का अवसर है कि याचिका प्रस्तुत करने में यह न्यायालय जिस एकमात्र देरी को माफ करेगा, वह ऐसी देरी है जो याचिकाकर्ता द्वारा उसे दिए गए विधिक उपाय का अनुसरण करने के कारण हुई है। इस विशेष मामले में याचिकाकर्ता ने कोई विधिक उपाय नहीं अपनाया। उसने जो उपाय अपनाया वह अतिरिक्त-विधिक या अतिरिक्त-न्यायिक था। एक बार जब सरकार का अंतिम निर्णय आ जाता है, तो अभ्यावेदन केवल अनुकंपा या अनुग्रह के लिए एक अपील होता है, लेकिन यह उस उपाय का अनुसरण नहीं कर रहा है जो कानून ने याचिकाकर्ता को दिया है।"*

स्पष्ट रूप से, रिट याचिका देरी और कमियों के कारण रोक दी गई थी। याचिकाकर्ता ने लगभग 18 वर्ष की देरी के बाद इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। रिट याचिकाकर्ता की ओर से लापरवाही और रिट याचिका दायर करने में देरी के लिए कोई संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं दिया गया। इसके अलावा तीसरे पक्ष के अधिकार भी स्थापित

कर दिए गए हैं। कानून ने लंबे समय से उन अकर्मण्य वादियों के विरुद्ध अपना रुख अपना रखा है जो लंबे विलंब के बाद इस न्यायालय में आए हैं।

न्यायालयों ने लगातार देखा है कि वादी की ओर से विलंब और देरी उसे किसी भी राहत से वंचित कर देगी। इस संबंध में माननीय उच्चतम न्यायालय ने कानून को स्पष्टता के साथ निपटाया है और इसका निरंतरता के साथ अवलोकन किया है।

इस बिंदु पर प्राधिकारियों की कतार सुसंगत और लंबी है। चर्चा से प्राधिकारियों को इस बिन्दु पर लाभ होगा।

माननीय उच्चतम न्यायालय ने ***आर एंड एम ट्रस्ट बनाम कोरमंगला रेजिडेंट्स विजिलेंस ग्रुप एवं अन्य, 2005 (3)*** *एससीसी* ***91*** *में रिपोर्ट किया गया, मामले मे इस प्रकार निर्णय किया कि:-*

> *"इसमें कोई संदेह नहीं है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए देरी एक बहुत महत्वपूर्ण कारक है। हम देरी के कारण पैदा हुए तीसरे पक्ष के हित में खलल नहीं डाल सकते। अन्यथा भी न्यायालय को उस व्यक्ति के बचाव में क्यों आना चाहिए जो अपने अधिकारों के प्रति सचेत नहीं है।"*

माननीय उच्चतम न्यायालय ने ***महाराष्ट्र राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम बलवंत रेगुलर मोटर सर्विस, एआईआर 1969 एससी 329*** *में रिपोर्ट किया गया, में यह निर्णय किया:-*

> *"अब समानता वाले न्यायालयों में खामियों का सिद्धांत कोई मनमाना या तकनीकी सिद्धांत नहीं है। जहां कोई उपाय देना व्यावहारिक रूप से अन्यायपूर्ण होगा, या तो क्योंकि पक्ष ने अपने आचरण से ऐसा किया है जिसे इसकी छूट से उचित रूप से समकक्ष माना जा सकता है, या जहां उसके आचरण और उपेक्षा से उसने, हालांकि शायद उस उपाय को त्यागा नहीं है, फिर भी दूसरे पक्ष को ऐसी स्थिति में डाल दिया है, जिसमें उसे रखना उचित नहीं होगा, यदि उपाय बाद में दोनों में से एक में घोषित किया जाता है, इन मामलों में, समय की चूक और देरी सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। लेकिन हर मामले में, यदि राहत के विरुद्ध एक तर्क, जो अन्यथा उचित होगा, केवल देरी पर आधारित है, तो वह देरी निश्चित रूप से सीमाओं के किसी भी क़ानून द्वारा बाधा के समान नहीं है, उस बचाव की वैधता को काफी हद*

तक न्यायसंगत सिद्धांतों पर आजमाया जाना चाहिए। ऐसे मामलों में, दो परिस्थितियां हमेशा महत्वपूर्ण होती हैं, देरी की अवधि और अंतराल के दौरान किए गए कार्यों की प्रकृति, जो किसी भी पक्ष को प्रभावित कर सकती है और कोई न कोई उपाय अपनाने में, जहां तक उपचार का संबंध है, न्याय या अन्याय के बारे में संतुलन का कारण बन सकती है।"

इसी तरह की भावना माननीय उच्चतम न्यायालय ने ***शिव दास बनाम भारत संघ,*** *2007 (9)* ***एससीसी*** *274 में रिपोर्ट किया गया, में निम्नानुसार व्यक्त की थी:-*

"उच्च न्यायालय आम तौर पर असाधारण उपाय के लिए देर से सहारा लेने की अनुमति नहीं देता है क्योंकि इससे भ्रम और सार्वजनिक असुविधा पैदा होने की संभावना होती है और इसके साथ नए अन्याय आने की संभावना हो सकती है, और यदि अनुचित देरी के बाद रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जाता है, तो इसका प्रभाव भड़काने वाला हो सकता है, जो न केवल कठिनाई और असुविधा वाला, बल्कि तीसरे पक्ष पर अन्याय भी हो सकता है। यह बताया गया कि जब रिट क्षेत्राधिकार लागू किया जाता है, तो इस बीच तीसरे पक्ष के अधिकारों के निर्माण के साथ अस्पष्ट देरी एक महत्वपूर्ण कारक है जो यह तय करने में उच्च न्यायालय पर भी निर्भर करती है कि क्या या ऐसे अधिकार क्षेत्र का प्रयोग न करें।"

देरी से स्वतंत्र तीसरे पक्ष के अधिकार प्रभावित होंगे, जिन्हें हटाया नहीं जा सकता। बाद की घटनाओं का जमाव मूल दावे को अस्पष्ट कर देता है और कारण को ही बदल देता है। पुराने दावों पर आपत्ति जताने की अनुमति देने से इनकार सहमति के सिद्धांत पर आधारित है। कुछ स्थितियों में, पक्ष समय पर दावा उठाने में विफल रहने पर लंबे विलंब के बाद दावा करने का अपना अधिकार छोड़ देती है।

इसी प्रकार, माननीय उच्चतम न्यायालय ने ***अध्यक्ष/प्रबंध निदेशक, उ.प्र. पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड एवं अन्य बनाम राम गोपाल****, 2020* ***की सिविल अपील संख्या*** *852 (2016* ***की विशेष अनुमति याचिका (सिविल) संख्या*** *36253* ***से उत्पन्न****), 30.01.2020 को निर्णय लिया गया, के मामले में पैरा 16 में निम्नानुसार निर्णय दिया है:-*

"जबकि यह सच है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 या 226 के

तहत कार्यवाही पर सीमाएं सख्ती से लागू नहीं होती हैं, फिर भी, ऐसे अधिकारों को अनुचित समय व्यतीत होने के बाद लागू नहीं किया जा सकता है। रिट कार्रवाइयों में अस्पष्ट देरी और अत्यधिक कमियों पर विचार करना हमेशा प्रासंगिक होगा, और रिट अदालतों को स्वाभाविक रूप से उन लोगों की रक्षा के लिए अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में अनिच्छुक होना चाहिए जो गलतियों पर सोते रहे हैं और जिन्होंने अवैधताओं को पनपने की अनुमति दी है। बाड़ लगाने वालों को न्यायालयों में घुसने और अपनी सुविधानुसार अपने अधिकारों के लिए रोने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, और सतर्क नागरिकों के साथ केवल अवसरवादियों के समान व्यवहार नहीं किया जाना चाहिए। कई अवसरों पर, यह दोहराया गया है कि समय की अंतर्निहित सीमाएँ हैं जिनके भीतर रिट उपचार लागू किया जा सकता है।

*बां**दा विकास प्राधिकरण बांदा बनाम मोती लाल अग्रवाल एवं अन्य**, (2011), 5 **एससीसी** 394 में रिपोर्ट किया गया, में इस प्रकार निर्णय किया गया:-*

"16. यह सच है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत याचिका दायर करने के लिए कोई सीमा निर्धारित नहीं की गई है, लेकिन स्वयं लगाए गए संयम के कई नियमों में से एक वरिष्ठ न्यायालयों द्वारा विकसित किया गया है कि उच्च न्यायालय लंबे समय के अंतराल के बाद दायर याचिकाओं पर विचार नहीं करेगा क्योंकि इससे पक्षकारों के निपटारे/क्रिस्टलीकृत अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। यदि रिट याचिका समान कारण के लिए सिविल मुकदमा दायर करने के लिए निर्धारित सीमा अवधि से परे दायर की जाती है, तो उच्च न्यायालय देरी को अनुचित मानेगा और याचिकाकर्ता की शिकायत पर गुणागुण के आधार पर विचार करने से इनकार कर देगा।"

यदि अपीलार्थी द्वारा दायर रिट याचिका पर विद्वान एकलपीठ द्वारा 18 वर्ष की देरी से विचार किया गया होता, तो यह निश्चित रूप से वर्ष 2003 में विभाग में नियुक्त अन्य व्यक्तियों की वरिष्ठता और पदोन्नति को प्रभावित करेगा और इसके परिणामस्वरूप कर्मचारियों की स्थापित स्थिति अस्थिर हो जाएगी। इस प्रकार, विद्वान एकलपीठ द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष इस न्यायालय के हस्तक्षेप की गारंटी नहीं देते हैं।

*हम यहां **सुब्रत रॉय सहारा बनाम भारत संघ, (2014) 8 एससीसी 470 में रिपोर्ट किया गया,** के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दी गई एक टिप्पणी का उल्लेख कर सकते हैं:*

> *"191. भारतीय न्यायिक प्रणाली निरर्थक मुकदमेबाजी से बुरी तरह पीड़ित है। वादियों को निरर्थक और गैर-विचारणीय दावों के प्रति उनके बाध्यकारी जुनून से रोकने के लिए तरीके और साधन विकसित करने की आवश्यकता है। यह ध्यान रखने की जरूरत है कि मुकदमेबाजी की प्रक्रिया में, हर गैर-जिम्मेदार और मूर्खतापूर्ण दावे का दूसरी तरफ एक निर्दोष पीड़ित होता है। जब तक मुक़दमा लंबित रहता है, वह अपनी ओर से बिना किसी गलती के, लंबे समय तक घबराहट और बेचैनी की परेशानियाँ झेलता है।*

परिणामस्वरूप, अपीलार्थी द्वारा दायर की गई विशेष अपील योग्यता से रहित है और तदनुसार अपास्त कर दी गई है।

स्थगन आवेदन और सभी लंबित आवेदन), यदि कोई हो, का निपटारा किया जाता है।

(अनूप कुमार ढांड), न्यायमूर्ति ***(प्रकाश गुप्ता), न्यायमूर्ति***

टिप्पणी: इस निर्णय का हिन्दी अनुवाद निविदा फर्म **राजभाषा सेवा संस्थान** द्वारा किया गया है, जिसे फर्म के निदेशक डॉ .वी के .अग्रवाल ,द्वारा मान्य और सत्यापित किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए ,निर्णय का मूल अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन व कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।